भूतशुद्धि – प्रयोग

भूतशुद्धि का अर्थ है अव्यय ब्रह्म के संयोग से शरीर के रूप में परिणत पञ्चभूतों का शोधन।

शरीराकार भूतानां भूतानां यद्विशोधनम्।
अद्वयब्रह्मसंयोगाद्भूतशुद्धिरियं मता।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 164)

भावनाशक्ति और मन्त्रशक्ति के संयोग से क्रियाविशेष द्वारा शूरीरस्थ मलिन भूतों को भस्म करके, नवीन दिव्य भूतों का निर्माण करने और स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर के शोधन में ही इस क्रिया का तात्पर्य है। चित्तशुद्धि के लिये जितनी क्रियाओं का निर्देश किया गया है, उनमें इस क्रिया का स्थान सर्वोपरि है। वसिष्ठसंहिता में तो यहाँतक कहा गया है कि इसके बिना जप–पूजादि कृत्य निरर्थक हो जाते हैं।

देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्।
देवार्चायोग्यताप्राप्त्यैभूतशुद्धिं समाचरेत्।।

(मन्त्रमहोदधिः 1/9 तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 35)

भूतशुद्धिं विधायैव प्राणस्थापनमाचरेत्।
भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजाऽभिचारवत्। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 35)
विपरीतफलं दद्यादभक्त्या पूजनं यथा।।

अर्थात् देवता बनकर ही देवों की पूजा करनी चाहिये और देवार्चन की योग्यता भूतशुद्धि से प्राप्त हो सकती है। भूतशुद्धि के बाद प्राणस्थापन करना चाहिये। भूतशुद्धि के विना की गयी पूजा अभिचारवत् है। तथा अभक्तिपूर्वक की गयी पूजा के समान विपरीत फल देनेवाली होती है।

वास्तव में ऐसी ही बात है। जबतक शरीर अशुद्ध रहेगा, मन में पाप भावनाएँ रहेंगी, तबतक एकाग्रभाव से किसी की पूजा, ध्यान आदि कैसे किये जा सकते हैं। भूतशुद्धि के संक्षेप और विस्तार–भेद से कई प्रकार हैं। उनमें से कुछ थोड़े से यहाँ लिखे जा रहे हैं।

स्नान, सन्ध्या आदि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर पूजा या ध्यान के स्थान पर आवे और वहाँ आसन पर बैठकर आचमनादि आवश्यक कृत्य करके अपने चारों ओर जल छिड़के और ऐसी भावना करे कि मेरे चारों तरफ अग्नि की एक दिव्य चहारदीवारी है–ऐसा करते समय अग्नि बीज 'रं' का जप करता रहे और मेरा आसन दृढ़ एवं शरीर स्थिर है, परमात्मा की कृपा से कोई विघ्न–बाधा मुझे अपने संकल्प से विमुख नहीं कर सकेगी। इसके पश्चात् भूतशुद्धि का सङ्कल्प करे–

'ओम् अद्येत्यादि.....देवपूजाद्यधिकारसिद्धये भूतशुद्धयाद्यहं करिष्ये।'

(मन्त्रमहोदधिः पृ. 8)

तत्पश्चात् कुम्भक करते हुए कुण्डलिनी का चिन्तन करे। कुण्डलिनी सहस्र - सहस्र विद्युत् की कान्ति के समान देदीप्यमान है और कमलनालगत तन्तु के समान सूक्ष्म एवं सर्पाकार है। वह मूलाधारचक्र में सोती रहती है। अब वह जग गयी है और क्रमशः स्वाधिष्ठान और मणिपूरचक्र का भेदन करके सुषुम्णामार्ग से हृदयस्थित अनाहतचक्र में आ गयी है। हृदय में दीपशिखा के समान आकारवाला जीव निवास करता है। उसे उसने अपने मुख में ले लिया और कण्ठस्थ विशुद्धचक्र तथा भ्रूमध्यस्थ आज्ञाचक्र का भेदन करके पूर्वोक्त मार्ग से ही सहस्रार में पहुँच गयी। सहस्रार में परमात्मा का निवास है। **'हंसः सोहम्'** मन्त्र के द्वारा वह कुण्डलिनी जीवात्मा के साथ ही परमात्मा में विलीन हो गयी। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 64)

इसके बाद ऐसी भावना करनी चाहिये कि शरीर में पैर के तलवे से लेकर जानुपर्यन्त पृथिवीमण्डल है और इसका बीज 'लँ' है। वह चौकोर एवं वज्रांकित है और उसका रंग पीला है। उसी में पादेन्द्रिय, चलने की क्रिया, गन्तव्य स्थान, गन्ध, घ्राण, पृथिवी, ब्रह्मा, निवृत्तिकला[1] एवं समान वायु निवास करते हैं। इनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा।'** - इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें जलस्थान में विलीन कर देना चाहिये। जानु से नाभिपर्यन्त श्वेतवर्ण का दो कमलों से अंकित, अर्द्धचन्द्राकार जलमण्डल है जिसका बीज 'वँ' है। उसी में हस्त - इन्द्रिय, दानक्रिया, दातव्य, रस, रसनेन्द्रिय, जल, विष्णु, प्रतिष्ठाकला, और उदान वायु निवास करते हैं। उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा।'** - इस मन्त्र का उच्चारण करके कुण्डलिनी के द्वारा उन सबको अग्निस्थान में विलीन कर देना चाहिये। नाभि से लेकर हृदयपर्यन्त रक्तवर्ण का स्वस्तिकांकित त्रिकोण अग्निमण्डल है। जिसका बीज 'रं' है। उसमें पायु - इन्द्रिय, विसर्गक्रिया, विसर्जनीय, रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्याकला एवं व्यानवायु निवास करते हैं। उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा।'** - इस मन्त्र का उच्चारण करके कुण्डलिनी के द्वारा वायुमण्डल में विलीन कर देना चाहिये। हृदय से भ्रूपर्यन्त काले रंग का गोलाकार छः बिन्दुओं से चिह्नित वायुमण्डल है। जिसका बीज **'यं'** है। उसमें उपस्थ - इन्द्रिय, आनन्द - क्रिया, उस इन्द्रिय का विषय, स्पर्श, स्पर्श का विषय और वायु, ईशान, शान्तिकला एवं अपानवायु का निवास है। उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रैं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने स्वाहा।'** - इस मन्त्र का उच्चारण करके आकाशमण्डल में उनको विलीन कर देना चाहिये। भ्रूमध्य

1. मनुष्य के शरीर में पाँच प्रकार की कलायें या शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। पैर के तलवे से जानुपर्यन्त निवृत्तिकला वा शक्ति, जानु से नाभीपर्यन्त प्रतिष्ठाकला, नाभी से कण्ठपर्यन्त विद्याकला, कण्ठ से ललाटपर्यन्त शान्तिकला और ललाट से शिखापर्यन्त शान्त्यतीतकला - शक्ति प्रतिष्ठित है।

से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त स्वच्छ आकाशमण्डल है। जिसका बीज 'हं' है। उसमें वाग्-इन्द्रिय, वचन-क्रिया, वक्तव्य, शब्द, श्रोत्र, आकाश, सदाशिव, शान्त्यतीतकला और प्राणवायु का निवास है। उनका स्मरण करके-'**ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा।**' – इस मन्त्र का उच्चारण करके उन सबको कुण्डलिनी के द्वारा अहङ्कार में विलीन कर देना चाहिये। अहङ्कार को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को शब्दब्रह्मरूपा हृदयशब्द के सूक्ष्मतम अर्थ प्रकृति में विलीन कर दें। और प्रकृति को नित्यशुद्धबुद्धस्वभाव, स्वयंप्रकाश, सत्यज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप, परम कारण, ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में विलीन कर दें।

पृथ्वी आदि तत्त्वों को जलादि में विलीन करने की क्रिया का वर्णन अन्यत्र कुछ भिन्न भी हो सकता है। कई बार सम्प्रदायभेद से ऐसा हो जाता है। 'अनुष्ठानप्रकाशः' में विलीन करने की क्रिया निम्न प्रकार से दी गयी है। यह क्रिया शैवों की है।

पृथ्वी का जल में विलय करने के लिये - "**'ॐ लं फट्' इत्यनेन पञ्चगुणां पृथ्वीमप्सु उपसंहरामि।**" इस प्रकार की भावना से पृथ्वी का जल में विलय करना चाहिये। इसी प्रकार "**ॐ वं हुं फट्' इति चतुर्गुणा अपोऽग्नौ उपसंहरामि**" की भावना से अग्नि में जल का विलय करे, "**ॐ रं हुं फट्' इति त्रिगुणं तेजो वायौ उपसंहरामि**" से अग्नि का वायु में, "**ॐ यं हुं फट्' इति द्विगुणं वायुमाकाशे उपसंहरामि**" से वायु का आकाश में तथा "**ॐ हं हुं फट्' इत्येकगुणमाकाशमहंकारे उपसंहरामि**" की भावना से आकाश का अहंकार में विलय करे। इसके बाद विलय करने की क्रिया उपर्युक्त प्रकार से ही है। यहाँ अन्तर केवल विलय करने के मन्त्रों में है। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 64)

इसके पश्चात् पापपुरुष का शोषण करने के लिये विनियोग करे-'**ॐ शरीरस्यान्तर्यामी ऋषिः सत्यं देवता प्रकृतिपुरुषश्छन्दः पापपुरुषशोषणे विनियोगः।**' पहले पापपुरुष का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये-मेरी वाम कुक्षि में अनादिकालीन पाप मूर्त्तिमान् पुरुष के रूप में निवास करता है। उसका शरीर अँगूठे के बराबर है। वह कान्तिहीन एवं काला है। पाँच महापापों से ही उसके शरीर का निर्माण हुआ है-ब्रह्महत्या उसका सिर है, स्वर्णस्तेय(सोने की चोरी) दोनों हाथ हैं, सुरापान हृदय है, गुरुतल्पगमन कटि है और इन पापों से युक्त पुरुषों का संसर्ग दोनों पैर हैं; अङ्ग-प्रत्यङ्ग पाप से ही बने हैं। रोम-रोम उपपातक हैं, दाढ़ी और आँखें लाल हैं, उसके हाथों में अविवेक का खड्ग और अहंता की ढाल है, असत्य के घोड़े पर सवार है, चेहरे से पिशुनता प्रकट हो रही है, क्रोध के दाँत हैं, काम की कवच है। गदहे के समान रेंकता है। ऐसा मूढ़ पापपुरुष व्याधिग्रस्त होने के कारण मरणासन्न हो रहा है। इस प्रकार पापपुरुष का चिन्तन करके उसके शोषण का विनियोग करना चाहिये।

मन्त्रमहोदधिः, प्रथम तरंग, पृ. 9 पर विनियोग – वाक्य इस प्रकार है–

ॐ अस्य वायु बीजस्य किस्किन्धऋषिः वायुर्देवता जगतीछन्दः पापपुरुषशोषणे विनियोगः।

ॐ **'यं'** – यह वायु – बीज है। इसके किष्किन्ध ऋषि हैं, वायु देवता हैं और जगती छन्द है। पापपुरुष के शोषण में इनका विनियोग है। नाभि के मूल में षड्विन्दुचिह्नित एक मण्डल है। उस पर धूम्रवर्ण का वायु – बीज **'यं'** रहता है। उसकी ध्वजाएँ चंचल होती रहती हैं और उसमें से 'घूं – घूं' शब्द निकलता रहता है। सबको सुखा डालना उसका काम है। इस प्रकार **'यं'** बीज का चिन्तन करके और पूरक के द्वारा 32 अथवा सोलह बार उसकी आवृत्ति करके उस बीज से उठे हुए वायु के द्वारा पापपुरुष को सशरीर सूखा हुआ देखना चाहिये। इसके पश्चात् सूखे हुए पापपुरुष के शरीर को भस्म करने के लिये इस प्रकार विनियोग करना चाहिये–

ॐ **अस्याग्निबीजस्य कश्यप ऋषिः अग्निर्देवता त्रिष्टुप्छन्दः पापपुरुष भस्मीकरणे विनियोगः।** (मन्त्रमहोदधिः पृ. 9)

इसके कश्यप ऋषि, अग्नि देवता और त्रिष्टुप छन्द हैं। पापपुरुष के शरीर को भस्म करने के लिये इनका विनियोग है। हृदय में रक्तवर्ण का अग्निमण्डल है। उसके देवता रुद्र हैं, विद्याकला का उसी में निवास है। उसमें बीज है **'रं'**। ऐसा चिन्तन करके कुम्भक के द्वारा 64 या 50 बार **'रं'** की आवृत्ति करके पापपुरुष के सूखे हुए शरीर को भस्म कर दे। इसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार से वायु – बीज **'यं'** का पापपुरुष की भस्म निकालने के लिये विनियोग कर वायुबीज **'यं'** की 16 या 32 बार आवृत्ति करके दाहिने नासाद्वार से रेचक प्राणायाम के द्वारा पापपुरुष का भस्म उड़ा दे। इसके पश्चात् वरुण – बीज **'वं'** का उस भस्म को आप्लावित करने के लिये इस प्रकार विनियोग करे–

ॐ **अस्य वरुणबीजस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः हंसदेवता त्रिष्टुप्छन्दः आप्लावितकरणे विनियोगः।** (मन्त्रमहोदधिः पृ. 10)

इसके हिरण्यगर्भ ऋषि हैं, हंस देवता हैं और त्रिष्टुप् छन्द है। पापपुरुष के भस्म को आप्लावित करने के लिए इनका विनियोग है। सिर में अर्द्धचन्द्राकार दो श्वेत पद्मवाले वरुणदैवत वरुण – बीज **'वं'** का चिन्तन करना चाहिये और उससे प्रवाहित होनेवाले अमृत से पिण्डीभूत भस्म को आप्लावित अनुभव करना चाहिये। इसके पश्चात् पृथिवी बीज ॐ **'लं'** का घनीकरण के लिये विनियोग इस प्रकार करना चाहिये–

ॐ **अस्य पृथिवीबीजस्य ब्रह्मा ऋषिः इन्द्रो देवता गायत्री छन्द घनीकरणे विनियोगः।**

इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता इन्द्र हैं और छन्द गायत्री। घनीकरण के लिये इनका विनियोग है। आधारमण्डल में वज्रलाञ्छित पृथिवी है–चौकोनी, कड़ी, पीली और इन्द्रदैवत। उस पर **'लं'** बीज का चिन्तन करना चाहिये। उसके प्रभाव से(भस्मपिण्डरूपी) शरीर को दृढ़ एवं कठिन चिन्तन करके आकाश–बीज **'हं'** का चिन्तन करना चाहिये। आकाशमण्डल वृत्ताकार, स्वच्छ, शान्त्यतीतकला से युक्त, आकाशदैवत एवं 'हं' रूप है। इसकी भावना से(पिण्डीभूत) शरीर सावकाश एवं व्यूहित हो जाता है। अर्थात् **'हं'** इस बीज को जपते हुए कल्पना से शरीर की रचना करनी चाहिये। इस प्रकार अपना दिव्य शरीर भावित करके पूर्वोक्त प्रक्रिया से परमात्मा में विलीन तत्त्वों को पुनः अपने–अपने स्थान पर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार जब सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर की दिव्यता सम्पन्न हो जाय, तब **'ॐ (हंसः) सोऽहम्'**[1] इस मन्त्र से परमात्मा की सन्निधि से जीव को हृदय–कमल में ले आवे और ऐसा अनुभव करे कि मैं परमात्मा की सत्ता, शक्ति, कृपा, सान्निध्य और सायुज्य का अनुभव करके परम पवित्र और दिव्य हो गया हूँ। मेरा शरीर पापरहित, नूतन, निर्मल और इष्ट देवता की आराधना के योग्य हो गया है। हृदय में जीव को स्थापित कर मूलाधार में कुण्डलिनी को ले जाय। इसके पश्चात् आगे का प्राणप्रतिष्ठा आदि कार्यक्रम प्रारम्भ करे।

इसके अतिरिक्त पुरश्चरणचन्द्रिका में एक संक्षिप्त भूतशुद्धि का तरीका इस प्रकार बताया गया है–

अथवान्यप्रकारेण भूतशुद्धिर्विधीयते।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभितम्।।
ऐश्वर्याष्टदलोपेतं परवैराग्यकर्णिकम्।
स्वीयहृत्कमले ध्यायेत्प्रणवेन प्रकाशितम्।।
कृत्वा तत्कर्णिकासंस्थं प्रदीपकलिकानिभम्।
जीवात्मानं हृदि ध्यात्वा मूले सञ्चिन्त्य कुण्डलीम्।।
सुषुम्णावर्त्मनात्मानं परमात्मनि योजयेत्।

(मन्त्रमहोदधिः प्रथम तरंग पृ. 10 पर पुरश्चरणचन्द्रिका का कथन)

"अन्य प्रकार से भूतशुद्धि इस प्रकार की जाती है – 'हृदय में एक कमल है, उसका मूल धर्म है और नाल ज्ञान है। आठ प्रकार के ऐश्वर्य उसके दल हैं और परवैराग्य ही कर्णिका है। वह प्रणव के द्वारा उद्भासित हो रहा है। उस कर्णिका पर दीपशिखा के समान ज्योतिःस्वरूप जीवात्मा

1. अनुष्ठानप्रकाशः(पृ. 65–66) में **'ॐ हंसः सोऽहम्'** मन्त्र लिखा है जबकि मन्त्रमहोदधिः(पृ. 10) में मात्र **'ॐ सोऽहम्'** लिखा है।

स्थित है।' ऐसा ध्यान करके मूलाधार में कुण्डलिनी का चिन्तन करे। वहाँ से आकर कुण्डलिनी जीवात्मा को अपने मुख में ले लेती है और सुषुम्णामार्ग से जाकर परमात्मा में मिल जाती है।" कुछ समयतक इसी अवस्था का अनुभव करके पुनः जीवात्मा को हृदय में ले आना चाहिये और आगे का प्राणप्रतिष्ठा आदि विधान करना चाहिये। यह संक्षेप भूतशुद्धि है।

भूतशुद्धि की ये दोनों प्रणालियाँ साधक-सम्प्रदाय में प्रचलित हैं जिनसे कई साधकों को बहुत लाभ होता है। इन दो प्रणालियों के अतिरिक्त एक तीसरी प्रणाली भी है, जिसका उल्लेख मन्त्रमहोदधिः में है, तथा उससे किसी-किसी को बड़ा लाभ होता है। यह सत्य है कि उपर्युक्त प्रणालियों में राजयोग की अनुभूति, लययोग की भावना, मन्त्रयोग की शक्ति और हठयोग की क्रियाएँ विद्यमान हैं। परन्तु इसमें केवल मन्त्र-शक्ति ही है। भावना का सुन्दर पुट भी है। राजयोग में इसकी परिणति है। परन्तु हठयोग बिल्कुल नहीं है। उसके चार मन्त्र निम्नलिखित हैं –

1. ॐ **भूतशृङ्गाटात् शिरःसुषुम्णापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।**
2. ॐ **यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।**
3. ॐ **रं सङ्कोचशरीरं दह दह स्वाहा।**
4. ॐ **परमशिवसुषुम्णापथेन मूलशृङ्गाटम् उल्लस उल्लस ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल सोऽहं हंसः स्वाहा।**(मन्त्रमहोदधिः पृ. 11)

मन्त्रोक्त अर्थ की भावना करते हुए उपर्युक्त मन्त्रों की कुछ समय तक आवृत्ति कर लेनी चाहिये। कुछ दिनोंतक लगातार श्रद्धापूर्वक अभ्यास करने से बड़े विचित्र-विचित्र अनुभव हो सकते हैं और अपनी दिव्यता प्रकट हो जाती है।

इष्टदेव और श्रीगुरुदेव के ध्यान में जब चित्त तन्मय हो जाता है और उनकी कृपा का अनुभव करके उसी में उन्मज्जन-निमज्जन करने लगता है तब पवित्रता, शक्ति, शान्ति और आनन्द की शत-शत धाराएँ उसके सम्पूर्ण 'स्व' को और यही क्यों, निखिल जगत् को आप्यायित, आप्लावित और अत्यन्त दिव्य बना देती हैं। जो धीर भाव से साधन करते हैं, उनके जीवन में ये सब बातें प्रत्यक्षरूप से प्रकट हो जाती हैं।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'साधनांक', मन्त्रमहोदधिः प्रथम तरंग तथा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा प्रकाशित 'अनुष्ठानप्रकाशः' पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁